Shri Para Puja Prakasha Stotram

श्रीपरापूजाप्रकाशस्तोत्रम्

Document Information

Text title : Para Puja Prakasha Stotram

File name : parApUjAprakAshastotram.itx

Category : devii, dashamahAvidyA, devI, pUjA

Location : doc_devii

Author : shrI ramAnAtha jI shAstrI

Proofread by : Preeti N Bhandare

Description/comments : Shri Vidya Sadhana

Latest update : January 22, 2022

Send corrections to : sanskrit@cheerful.com

This text is prepared by volunteers and is to be used for personal study and research. The file is not to be copied or reposted without permission, for promotion of any website or individuals or for commercial purpose.

Please help to maintain respect for volunteer spirit.

Please note that proofreading is done using Devanagari version and other language/scripts are generated using **sanscript**.

April 28, 2023

sanskritdocuments.org

श्रीपरापूजाप्रकाशस्तोत्रम्

॥ अथ श्रीपरा-पूजा-प्रकाश-स्तोत्रम् ॥

(छह आम्नायों के क्रम से भगवती षोडशी की आराधना)

मुखं बिन्दुर्मिश्रो ह्यरुण-धवलं बिन्दु-युगकम्
कुच-द्वन्द्वं योनिर्भगवति! च ते हार्द्ध-सु-कला ।
सुसामास्यं वा ऋग्यजुरुभयकं ते स्तन-युगम्
ततोऽथर्वो योनिस्तव जननि हे मन्मथ-कले! ॥ १॥

हे भगवती षडैश्वर्य-शालिनी, काम-कला-रूपिणी माता! सूर्य-बिन्दु ही आपका मुख है, अरुण तथा श्वेत अग्नि-सोमात्मक बिन्दु-युगल आपके स्तन-युगल हैं और योनि हार्द्ध-कला है एवं साम-वेद आपका मुख है, ऋग्वेद तथा यजुर्वेद स्तन-युगल हैं और योनि अथर्व-वेद है । अतः हे पर-देवता! आप में, त्रि-बिन्दु एवं चार वेदों में कोई भेद नहीं है ॥ १॥

ततः संसारेऽस्मिन् गगनमतुलं शब्द-गुणकम्
पुनः स्पर्शा-वेद्यं पवनमपि रूपञ्च दहनम् ।
रसाढ्यं पानीयं तदनु धरणीं गन्ध-गुणकाम्
सु-नाद-ब्रह्माख्यौ प्रकृति-पुरुषौ प्राजनयताम् ॥ २॥

ऊक्त त्रि-कोण से तदनन्तर इस संसार में नाद एवं ब्रह्म-रूप पूर्वोक्त काम-कलात्मक विसर्ग और बिन्दु-रूप प्रकाश-विमर्शात्मक प्रकृति एवं पुरुष ने श्रोत्र-ग्राह्य-गुण-युक्त शब्द-रूप से महाकाश, स्पर्श-गुण से ज्ञेय वायु, रूप-गुण-युक्त-रूप से तेजस्, रस-गुण-परिपूर्ण रस से जल और प्राण-ग्राह्य-गुण से युक्त गन्ध से पृथ्वी को बिन्दु-मथन-रूप ताण्डव-लीला से उत्पन्न किया ॥ २॥

विमर्शाख्ये शक्ते! भवसि हि परा त्वं क्षिति-तले

महेच्छा पश्यन्ती मणिपुरग-वामा भगवति! ।
तथा ज्येष्ठा ज्ञाना हृदय-गमना मध्यम-शिवा
क्रिया-शक्ती रौद्री मुख-कुहरगा वैखरि-कला ॥ ३॥

हे विमर्शाख्या भगवती!, शब्दोच्चारण के समय आप अकेली ही जब मूलाधार चक्र में स्फुरित होती हैं, तब परा-संज्ञक नाड़ई-रूप बन जाती हैं । मणिपुर-चक्र में जब पहुँचती हैं, तो इच्छा-शक्ति वामा बनकर पश्यन्ती-रूप धारण करती हैं । उसी प्रकार हृदय-अनाहत चक्र में जब गमन करती हैं, तो ज्ञान-शक्ति ज्येष्ठा बनकर मध्यमा-रूप धारण करती हैं और मुख-विवर में जब प्राप्त होती हैं, तो क्रिया-शक्ति रौद्री बनकर वैखरी नामवाली बनती हैं ॥ ३॥

पुरोक्तेच्छा-शक्तिः त्रिपुर-ललिता हादि-मतगा
महोग्रा ज्ञानाख्या जगति विदिता सादि-मतगा ।
क्रिया-शक्तिः काली कलन-निरता कादि-मतगा
परे! एकैव त्वं जयसि मत-भेदैः त्रिपुर-युक् ॥ ४॥

हे भगवती परा! आप जब पूर्वोक्त इच्छा-रूपिणी होती हैं, तब हादि-क्रम-समष्टि-रूपिणी त्रिपुर-सुन्दरी होती हैं । जब ज्ञान-रूपिणी बनती हैं, तब संसार में महा-चीन-क्रम-युत संवरौधि-मत से प्रसिद्ध सादि-क्रम-समष्टि-रूपिणी महोग्र-तारा बनती हैं और जब क्रिया-रूपिणी होती हैं, तो स्थिति करने में तत्पर कादि-क्रम-समष्टि-रूपिणी काल-संकलन-कर्त्री काली बनती हैं । इस प्रकार आप अकेली ही कादि, सादि और हादि-क्रम भेद से तीन पुर-रूप शरीरवाली त्रिपुर-सुन्दरी के रूप में जय को प्राप्त होती रहती हैं ॥ ४॥

त्रि-विद्यानां नूनं ख-पवन-कृशान्वब् वसु-मती-
समेतानां जातास्तनव इह षड्वा भुवनगाः ।
प्रजातं षट्-चक्रं शुभमपि सहस्रार-सहितं
षडाम्नायात्मा त्वं रस-तनु-धराऽभर्हि ललिते! ॥ ५॥

हे ब्रह्म-स्वरूपिणी शक्ति श्री ललिता देवी! इस संसार में आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी से युक्त कादि, हादि, सादि-रूप तीन विद्याओं

से ही जगत् में व्याप्त छह प्रकार की मूर्तियाँ बनी हैं । वे ही षडाम्नाय-विद्याएँ बनीं तथा सहस्रार-सहित सुन्दर षट्-चक्र (१. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपूर, ४. अनाहत, ५. विशुद्ध और ६. आज्ञा) बने । इस प्रकार आप निश्चय ही षट्-शरीर-धारिणी षडाम्नायात्मा हैं ॥ ५॥

परे! एका सृष्टि-स्थिति-लय-विधाने पुनरहो
अनाख्या भासायां त्वमसि ललनाचार-निरता ।
समालभ्यावस्थां विविध-मत-भेदोप-जनिताम्
शनैः पञ्ची-भूत्वा विलससि सदैव त्रि-भुवने ॥ ६॥

हे परे! आश्चर्य है कि आप अकेली ही १. सृष्टि, २. स्थिति और ३. लय-संहार-विधान में तथा ४. अनाख्या-तिरोधान एवं ५. भासा-अनुग्रह आदि कार्यों में ललनोचित क्रीडा में तत्पर रहती हैं तथा उपर्युक्त पञ्च-विध अवस्थाओं से रहित होकर भी पञ्च-विध अवस्थाओं को प्राप्त करके तीनों लोकों में सदा शोभित होती हैं ॥ ६॥

१- पूर्वाम्नाय

रसारं तद्-बाह्ये शुभ-वसु-दलाढ्यं सु-कमलम्
सरोजान्यद् दिव्यं विधु-दल-युतं तद् बहिरथो ।
चतुर्द्वारोपेतं विलसति यदा यन्त्रमतुलम्
तदा त्वं भो मात! भवसि भुवनेशी हर-नुते ॥ ७॥

भगवान् शिव द्वारा नमस्कृत्त हे माता! जब षट्-कोण, अष्ट-दल-कमल, षोडश-दल-कमल तथा चार द्वारों से युक्त भू-पुरवाला उत्तम यन्त्र पूर्वोक्त बिन्दु-युगल के उच्छलन से बनता है, तब उस समय आप पूर्वाम्नायात्मिका "भुवनेश्वरी"-रूप होती हैं ॥ ७॥

परे प्रागाम्नाये जगति विदिता राजस-वपुः
शुभाकारा भूत्वा सृजसि भुवना विश्वमखिलम् ।
तदा शम्भ्वाकारो भवति स परो धाम-विभव-
स्तयोरंशोत्पन्नो विधिरपि स सृष्टिं वित-नुते ॥ ८॥

हे परा भगवती! जब आप पूर्वाम्नाय में सु-प्रसिद्ध सुन्दर
आकार से रजो-गुण-युक्त शरीरवाली भुवनेश्वरी बनकर
अखिल विश्व की सृष्टि करती हैं, तब तेजः-पुञ्ज-रूप
पर-शिव-पशु-पति-रूप होते हैं और आप भुवनेश्वरी एवं
पशुपति के अंश से उत्पन्न ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं ॥ ८॥

सु-पूर्वे राजीवे स्मित-मुख-सरोजां पृथु-कुचाम्
शिवाकारां शान्तां तरुण-रवि-भासं हर-वधूम् ।
कराम्भोजैः पाशाङ्कुश-वर-महाभीति-दधतीम्
भजेऽहं रत्नाङ्गीं शश-धर-धरां रम्य-भुवनाम् ॥ ९॥

सगुण भावात्मक अर्थ-पूर्वाम्नाय में मन्द-मुस्कान से युक्त
मुख-कमलवाली, विशाल स्तन-शालिनी, शिव-स्वरूपा, शान्त, तरुण
सूर्य के समान कान्तिमती, भगवान् शिव की प्रिया तथा अपने (चारों)
कर-कमलों में क्रमशः१. पाश, २. अंकुश, ३. वरद-मुद्रा
तथा ४. अभय-मुद्रा को धारण करनेवाली, रत्नों से जटित,
आभूषणों से मण्डित एवं मुकुट में चन्द्रमा को धारण करनेवाली,
भुवन-मोहिनी भगवती भुवनेश्वरी की मैं आराधना करता हूँ ।

निर्गुण भावात्मक अर्थ-नित्यानन्द-रूपिणी, बिन्दु-द्वय-रूप
स्तनोंवाली, संसार की रचना में उद्यत, सकल जगत् के लिए
कल्याण-स्वरूप, शान्ति-प्रदायिनी, जिस प्रकार तरुण सूर्य नवीन
दिवस की सृष्टि करता है, उसी प्रकार तेजस्वी विश्व का निर्माण
करनेवाली, ताप-त्रय-नाशक भगवान् हर-शिव की शक्ति-रूपा,
अपने साधकों के ताप-त्रय को दूर करनेवाली, पाश-वशीकरण
शक्ति एवं अंकुश-स्तम्भन शक्ति से समस्त भुवन को अपने
वश में करके साधकों को अभिलषित वर एवं अभय देनेवाली
परामृत-रूपिणी रमणीय मूल प्रकृति का मैं स्मरण करता हूँ
॥ ९॥

त्रिकोणं वह्न्यस्त्र-त्रयमपि बहिस्त्र-त्र्यस्तमपरं
बहिः पद्मं दिव्यं वसु-दल-युतं भूमि-सदनम् ।
शिरःपङ्क्ति-ज्वालैः सह भवति यन्त्रं सुविमलम्

तदा श्यामा-काली त्वमसि परमाद्ये भगवति! ॥ १०॥

हे परमाद्या भगवती! जब पूर्वोक्त बिन्दु-त्रय, त्रिकोण, उसके बाहर तीन त्रिकोण और उसके बाहर पुनः त्रिकोण इस प्रकार पाँच त्रिकोणों के बाहर अष्ट-दल-कमल, तदनन्तर बाहर भू-पुर, मुण्ड-पंक्ति एवं ज्वालाओं से युक्त निर्मल यन्त्र बनता है, तब आप श्यामा-काली-दक्षिण-काली-रूपिणी बनती हैं । इस यन्त्र के पञ्च-त्रिकोण रक्त-बिन्दु के भाग हैं । अष्ट-दल-कमल श्वेत-बिन्दु का भाग है तथा भू-पुर, मुण्ड-पंक्ति एवं अग्नि-ज्वालाएँ मिश्र-बिन्दु के भाग हैं । पूर्वोक्त बिन्दु-त्रय से स्थिति होती है । इसीलिए स्थित्याम्नाव में बिन्दु-त्रय के भाग होते हैं, जिनसे समस्त दक्षिणाम्नाय चक्रों के पद्म आदि श्वेत-बिन्दु भाग, कोणादि रक्त-बिन्दु भाग तथा अन्य भू-पुर आदि मिश्र-बिन्दु भाग होते हैं । यह यन्त्र-संकेत है । मतान्तर में काली-यन्त्र माया-ह्रींकार-गर्भित, बिन्दु, पञ्च-त्रिकोण, षट्-कोण, वृत्त, अष्ट-दल, वृत्त एवं भू-पुर से युक्त होता है ॥ १०॥

२- दक्षिणाम्नाय

ततोऽवाच्याम्नाये त्वमपि परमे सत्त्व-गुणका
महा-श्यामा भूत्वा निखिल-भुवनं रक्षसि सदा ।
महा-कालाकारः प्रभवति तदा श्रीपर-शिव-
स्तयोरंशोत्पन्नो भरति च जगद्विष्णुरखिलम् ॥ ११॥

हे भगवती परम-स्वरूपा! तदनन्तर दक्षिणाम्नाय में भी आप जब सत्त्व-गुण-युक्त दक्षिण-काली-रूप महा-श्यामा बनकर सकल संसार की रक्षा करती हैं, तब श्रीपर-शिव महा-काल-भैरव-स्वरूप होते हैं तथा आप दोनों के अंश से उत्पन्न विष्णु सारे जगत् का पालन करते हैं ॥ ११॥

अवाच्यङ्के नौमि स्मर-हर-शवस्थां त्रि-नयनाम्
महा-श्यामा-कालीं जल-धर-निभां मुक्त-चिकुराम् ।
ललज्जिह्वां नग्नां शव-कर-परीधान-सुकटिम्
नृ-मुण्डं खड्गञ्चाभयमपि वरञ्चैव दधतीम् ॥ १२॥

सगुणात्मक भाव-परक अर्थ-दक्षिणाम्नाय में शिव-रूप शव
पर विराजमान, त्रि-नयना मेघ के समान वर्णवाली खुले हुए केशों
से युक्त, चलती हुई जीभवाली, नग्न, शवों के हाथों से ढके हुए
कटि-भागवाली, नृ-मुण्ड, खड्ग, अभय और वरद-मुद्रा को
(अपने चारों हाथों में) धारण की हुई महा-श्यामा काली को मैं
प्रणाम करता हूँ ।

निर्गुण भावात्मक अर्थ-काम-नाशक शव पर सत्ता
के रूप में स्थित अपने साधकों के काम-क्रोधादि का
विनाश करनेवाली, पूर्वोक्त बिन्दु-त्रय-समष्टि-रूपिणी,
शुद्ध-सत्त्व-गुणात्मक तथा चिदाकाश-रूप होने से नील-वर्ण
के रूप में चिन्तनीय, केश-विन्यासादि विलास-रूप विकारों से रहित,
रजो-गुण-रहित शुद्ध-सत्त्वात्मिका, मायातीत, कल्पावसान में
लिंग-देह का आश्रय लेकर सभी जीव स-गुण-ब्रह्म-रूपिणी
भगवती के गर्भ-धारण योग्य उदर के निम्न भाग तथा योनि
के ऊर्ध्व-भाग पर अपने मोक्ष की प्राप्ति के लिए मृत-जीवों
के प्रधान-कर्म-साधन-भूत कर-समूहों से आश्रित, अपने
वाम-हस्त से ज्ञान-खड्ग के द्वारा साधकों के मोह-पाश को
काटकर उसके नीचेवाले द्वितीय हस्त से विगत-रज, तत्त्व-ज्ञान
के आधार-भूत मस्तक को तथा दक्षिण ऊर्ध्व-हस्त से स-काम
साधकों को अभय और अधो-हस्त से अभीष्ट वर प्रदान करनेवाली
महा-श्यामा महा-सगुणात्मिका “क”-ब्रह्मा, “आ”-अनन्त, “ल”-विश्वात्मा
तथा “ई”-सूक्ष्मा इन सबसे युक्त काली को मैं नमन करता हूँ ॥ १२॥

३- पश्चिमाम्नाय

परे बिन्दुः शुद्धो विमलतरयोन्यन्तरगतो
बहिः षट्-कोणख्यं वसु-छदनकं केसर-युतम् ।
सरोजं भू-चक्र-त्रितयमपि दिव्यं सु-विमलम्
यदा यन्त्रं भाति त्वमसि हि तदा श्री-कुल-कुजा ॥ १३॥

हे परा भगवती! अतिशय निर्मल त्रि-कोण के मध्य में स्थित
बिन्दु-चक्र तथा बाहर षट्-कोण, केसर से युक्त अष्ट-दल-कमल

एवं भू-पुर-त्रय से युक्त ऐसा दिव्य उत्तम यन्त्र जब प्रकाशित होता है अर्थात् पूर्वोक्त मिश्र-बिन्दु इस प्रकार के यन्त्र-रूप को प्राप्त होता है, तब आप कुब्जिकेश्वरी-रूपा होती हैं । किसी के मत में केसर-युक्त अष्ट-पत्रों के बाहर अष्ट-कोण तथा उसके बाहर भू-पुर-त्रय भी है । कादि-मन्तान्तर में जब कुब्जिका विद्या में ही सभी विद्याओं की समष्टि होती है, तब बिन्दु, त्रि-कोण, षट्-कोण, केसर-युक्त अष्ट-दल, अष्ट-कोण तथा उसके बाहर भू-पुर-त्रय से समन्वित यन्त्र को ही कुब्जिका त्रि-रत्न और पञ्च-रत्न विद्याओं के सर्व-मत में भी श्रीचक्र-राज समझना चाहिए । इस यन्त्र के त्रि-कोण, षट्-कोण-चक्र, मतान्तर से अष्ट-कोण-चक्र भी विमर्श के भाग हैं । बिन्दु, केसर-सहित अष्ट-दल-कमल, भू-पुर-त्रय-चक्र प्रकाश के भाग हैं । पूर्वोक्त केवल मिश्र-बिन्दु का संहार होता है । इसलिए यहाँ संहार आम्नाय-यन्त्र में प्रकाश-विमर्शात्मक मिश्र बिन्दु के प्रकाश और विमर्श-रूप दो भाग होते हैं, जिससे समस्त पश्चिमाम्नाय चक्रों के बिन्दु, पद्म, भू-पुर आदि प्रकाश-भाग और कोणादि विमर्श-भाग हैं । यह यन्त्र-संकेत है ॥ १३॥

प्रतीच्याम्नाये त्वं कुल-जन-नुते श्रीपर-शिवे!
कुजा भूत्वा सर्वं हरसि तमसा स्वीकृत-तनुः ।
कुजेशाकारः सः प्रभवति तदा श्रीपर-शिव-
स्तयोरंशोत्पन्नः प्रलयति स रुद्रोऽखिल-जगत् ॥ १४॥

हे कुल-जनों (कौलिकों) के द्वारा प्रणत श्रीपर-शिवे! पश्चिमाम्नाय में आप तमो-गुण से स्वीकृत शरीरवाली कुब्जिकेश्वरी होकर समस्त शिवादि-क्षिति-पर्यन्त जो तत्त्व हैं, उनका संहार करती हैं और पर-शिव कुब्जेश के रूप में जब स्वच्छन्द ललित-भैरव रूप बनता है, तब कुब्जेशी और कुब्जेश के अंश से उत्पन्न रुद्र सारे जगत् का संहार करता है ॥ १४॥

प्रतीच्यम्भोजे वै कुच-भर-नतां बर्बर-शिखाम्
मृगेन्द्राङ्गे रूढां मद-मुदित-वक्त्रां त्रि-नयनाम् ।
नृ-मुण्डानां मालामपि परिदधानां कुल-कुजाम
सहस्रार्काभां त्वां ह्यभय-वरदां नौमि जननि! ॥ १५॥

सगुण भावात्मक अर्थ-हे जननी! पश्चिमाम्नाय में कुचों के भार से नत, बिखरे हुए बालोंवाली, सिंह पर विराजमान, मद से मुदित मुखवाली, त्रि-नेत्रा, नर-मुण्डों की माला पहनी हुई, अभय तथा वरद-मुद्रा से युक्त तथा हजारों सूर्यों के समान तेजस्वी कुब्जिका-रूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ ।

निर्गुण भावात्मक अर्थ-शुक्ल तथा अरुण-रूप बिन्दु-युगल के भार से नत, मिश्र-बिन्दु में समष्टि-रूप विलीन होने के लिए उद्यत, विकीर्ण दीप-ज्योति तथा जैसे एक दीप-शिखा से अन्य दीप-शिखा प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार प्रत्येक शरीरी के शरीर में कुण्डलिनी के रूप में व्याप्त, ज्ञानासना, ज्ञान-सत्ता-रूप, सहस्र-दल-पद्म से निःसृत लाक्षा-रस-तुल्य कान्तिवाली अमृत-धारा से प्रसन्न मुखवाली अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति-रूपा बिन्दु-मय समष्टि-रूपिणी ज्ञान, विवेक और विचार-रूपिणी महा-देवी, अपने भक्तों को अभय तथा ईप्सित वर प्रदान करने में उद्यत सूर्य-बिन्दु-रूप संहार-स्वरूपिणी कुल-कुण्डलिनी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १५॥

४- उत्तराम्नाय

स-बिन्दुस्त्र्यस्राढ्यं शर-नवक-वृत्ताष्ट-दलकैः
सु-वृत्ताष्टार्केन्द्राभिध-नलिन-काष्टाशनि-युतम् ।
शिरश्शूल-ज्वाला-पितृ-वन-युतं यन्त्रमतुलम्
यदा भाति त्वं वै भवसि भुवि गुह्या भगवति! ॥ १६॥

हे भगवती! जब (उत्तराम्नाय में) बिन्दु, त्रि-कोण, पञ्च-कोण, नव-कोण, वृत्त, अष्ट-दल, द्वादश-दल, चतुर्दश-दल, आठ वज्रों से युक्त, ऊपर शूल और ज्वाला से युक्त श्मशान से आवृत्त यन्त्र शोभित होता है, तब आप इस भू-तल पर गुह्य-काली के रूप में पूज्य होती हैं । यन्त्र संकेत-उक्त गुह्य-काली यन्त्र के त्रि-कोण, पञ्च-कोण, नव-कोण-चक्र विमर्श-भाग हैं तथा अन्य सभी चक्र-भाग प्रकाश-भाग होते हैं । केवल पूर्वोक्त मिश्र-बिन्दु का तिरोधान होता है,

इसलिए अनाख्या-यन्त्र में प्रकाश-विमर्शात्मक मिश्र-बिन्दु के प्रकाश-विमर्श रूप दो भाग होते है क्योंकि समस्त उत्तराम्नाय के चक्रों के कोणदि विमर्श-भाग तथा अन्य चक्र प्रकाश-भाग होते हैं ॥ १६॥

उदीच्याम्नाये त्वं मनु-तनुरनाख्या त्रि-गुणका
परे गुह्या भूत्वाऽऽचरसि हि तिरोधानमखिलम् ।
नृसिंहाकारः सन् निवसति तदा श्रीपर-शिव-
स्तयोरंशोत्पन्नेश्वर इह पिधानं प्रकुरुते ॥ १७॥

हे परा भगवति! आप उत्तराम्नाय में मन्त्र-मय मूर्ति मन और वचन से अगम्य तथा सत्त्व, रज एवं तमो-रूप त्रि-गुणवाली गुह्य-काली-रूप होकर समस्त शिवादि-क्षित्यन्त का निश्चित रूप से तिरोधान करती हैं । उस समय श्रीपर-शिव नृसिंहाकार-नारसिंह भैरव-रूप बनते हैं और उन गुह्येश्वरी तथा गुह्येश्वर के अंग से उत्पन्न ईश्वर इस संसार में तिरोधान-संहार कर्म करते हैं । किसी के मत में उत्तराम्नाय अनाख्या-रूप तथा उर्धाम्नाय भासा-रूप कहा गया है, जब कि अन्य मत में ऊर्ध्वाम्नाय भासा-रूप कहा जाता है किन्तु वड़वानल-तन्त्र में तो इन दोनों आम्नायों का एक तत्त्व ही प्रतिपादित है । यथा-महा-त्रिपुर-सुन्दरी और चण्ड-योगेश्वरी परा-इन दोनों में कोई भेद नहीं है । इनमें भेद करनेवाला नरक-गामी होता है । पूर्वोक्त योनि बिन्दु एवं विसर्ग की सगुण मूर्ति उत्तराम्नाय मत में "काम-कला-काली" तथा ऊर्ध्वाम्नाय मत में बृहद्-रूपा महा-त्रिपुर-सुन्दरी हैं, ऐसा बड़वानल-तन्त्र कहता है । इस तन्त्रोक्त महा-त्रिपुर-सुन्दरी के भैरव के पञ्च-मुख-रूप में बीचवाला मुख ही सिंह-रूप है, ऊर्ध्व-ज्योति मुख में तो सिद्धि-कराली मानी गई हैं । वड़वानल-तन्त्रोक्त निर्वाण-भैरव के ध्यान में उपर्युक्त बात कही गई है तथा महा-काल-संहिता के गुह्य-खण्ड में सिद्धि-कराली के भैरव नारसिंह भैरव बताये गए हैं ॥ १७॥

मृगेन्द्रेभाश्वर्क्षाख्य-मकर-गरुत्मानव-शिव-
प्लवङ्गेशी-वक्त्रां श्रुति-शर-भुजैरायुध-धराम् ।

उदीच्याम्भोजे त्वां विधु-सकल-चूडां घन-निभाम्
भजेऽहं गुह्येशीमभिनव-वयस्कां भगवति! ॥ १८॥

सगुण भावात्मक अर्थ-हे भगवति! उत्तराम्नाय में सिंह, हाथी, अश्व, भालू, मकर, गरुड, मनुष्य, शृगाल, वानर और योगेश्वरी के मुखोंवाली, चौवन भुजाओं में आयुधों को धारण करनेवाली, चन्द्र-कला-धारिणी, श्याम-वर्ण तथा युवति-स्वरूप ऐसी सिद्धि-कराली-रूप आपका मैं स्मरण करता हूँ ।

निर्गुण भावात्मक अर्थ-हे भगवति! उत्तराम्नाय में ज्ञान-शक्ति, आधार-शक्ति, वेग-शक्ति, भूचर-शक्ति, जलचर-शक्ति, खेचर-शक्ति, चैतन्य-शक्ति, धी-शक्ति, आरोह-अवरोह करनेवाली कुण्डलिनी-शक्ति और योग-शक्ति जिस विराट्-रूप के मुख हैं, मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार सहित पचास अक्षर-रूप मातृका-रूप चौवन भुजाओं में आयुधों को धारण करनेवाली परमामृत-रूपिणी विश्वम्भरा, घन के समान, दया-मयी और विश्व को पुनः बाहर निकालने के लिए उद्यत अतीव गुप्त अनाख्या-स्वरूपिणी आपकी मैं शरण प्राप्त करता हूँ ॥ १८॥

५- ऊर्ध्वाम्नाय

स-बिन्दु-त्र्यष्टादिग्युगल-मनु-कोणाष्ट-विधुक-
त्रि-वृत्त-ज्यागेह-त्रितय-युत-यन्त्रं लसति ते ।
तदा कामेशी त्वं जननि! निखिलाम्नाय-निलया
परे! श्रीविद्याख्या भवसि कुल-पूज्या क्रम-युता ॥ १९॥

हे परा-देवी! जब आपका सर्वानन्द-मय वैन्दव विन्दु-चक्र, सर्व-सिद्धि-प्रद त्रि-कोण-चक्र, सर्व-रोग-हर अष्टम-चक्र, सर्व-रक्षा-कर अन्तर्दशार-चक्र, सर्वार्थ-साधन-कर बहिर्दशार-चक्र, सर्वार्थ-दायक चतुर्दशार-चक्र, सर्व-संक्षोभण अष्ट-दल-चक्र, सर्वाशा-परि-पूरक षोडश-दल-चक्र, त्रै-वर्ग-साधन-कर त्रि-वृत्त-चक्र तथा त्रैलोक्य-मोहन-कर भू-पुर-त्रय-चक्र से युक्त आपका यन्त्र प्रकाश को प्राप्त होता है, तब पूर्व-कथित

काम-कला और ललनाकार से मिश्र-बिन्दु के ऊपर उठने पर वह श्री-चक्र-रूप को प्राप्त होता है । तब आप कुलाचार से पूज्य तथा क्रम-मन्त्र-समष्टि-रूपिणी समस्त आम्नाय-निलया सर्वाम्नायेश्वरी श्रीविद्या-रूपा श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी-रूप होती हैं । उक्त यन्त्र-राज के १. सृष्टि, २. स्थिति और ३. संहार-रूप से तीन क्रम होते हैं । इसमें विन्दु, अष्ट-दल, षोडश-दल, वृत्त-त्रय और भू-पुर-चक्र ये पाँच शिव-चक्र हैं, इसीलिए ये प्रकाशांश हैं । इसी प्रकार त्रि-कोण, अष्ट-कोण, दश-कोण-द्वय तथा चतुर्दशार ये पाँच चक्र शक्ति-चक्र हैं, अतः ये विमर्शांश हैं । यह यन्त्र-संकेत है ॥ १९॥

सदा-शिवः

महोर्ध्वाख्ये भाषा सु-वचन-मनो-गम्य-तनु-युक्
परे! त्वं श्रीर्भूत्वाऽऽचरसि निखिलानुग्रहमलम् ।
तदा निर्वाणाख्यः प्रभवति परः काम-तनुमान्
तयोरंशोत्पन्नः शमनुत-नुते पञ्च-वदनः ॥ २०॥

हे परा-देवी!, जब आप महोर्ध्वाम्नाय में मन और वचन से अगम्य भाषा-रूप श्रीविद्या-मय महा-त्रिपुर-सुन्दरी-रूप होकर पुनः बाह्य प्रकटन-रूप पूर्ण अनुग्रह करती हो, तब चिद्-घन-निष्ठ निर्वाण-भैरव कामेश्वर-रूप हो जाते हैं और काम तथा कामेश्वर के अंश से उत्पन्न पञ्च-वक्त्र सदा-शिव पूर्व-वत् अनुग्रह करते हैं ॥ २०॥

महोर्ध्वाम्नाये त्वां क्रमग-निखिलाम्नाय-जननीम्
हठाचारैर्लभ्यां कहस-मनु-रूपां त्रि-पथगाम् ।
हकारार्धां सार्धामकुल-कुलमार्गाभ्यसनिनीम्
महा-पञ्च-प्रेतोपरि रुचिरसिंहासन-गताम् ॥ २१॥

सहस्रादित्याभामरुण-वासनां मन्द्र-हसनाम्
त्रि-नेत्रास्यां पाशाङ्कुश-कुसुम-बाणैक्षवधराम् ।
निशानाथोत्तंसां जित-मदन-रूपाञ्च युवतीम्
भजेऽहं श्रीविद्ये! त्रिपुर-ललितां श्रीपद-युताम् ॥ २२॥

हे श्रीविद्या देवी!, महान् ऊर्ध्वाम्नाय-रूप प्रसिद्ध सिंहासन

पर क्रम-दीक्षा-गत समस्त आम्नायों की जनक, कादि, हादि और
सादि-मत-रूप मन्त्र-मय शरीर, ब्रह्म-रन्ध्र-मण्डल
से मूलाधार तक तथा पुनः वहाँ से ब्रह्म-रन्ध्र तक
आरोहावरोह-क्रम से विचरण करनेवाली, ह-श्वास एवं
ठ-उच्छ्वास-रूप क्रियाभ्यास से प्राप्य, इडा-पिंगला और
सुषुम्णादि तीन नाड़ैयों में सञ्चरणशील, हकारार्ध तथा सार्ध
समाधि में प्रासाद बीज के उभयाक्षर-रूपिणी, अतएव सच्चैतन्य
प्रकाश-विमर्शात्मिका, पञ्च-महा-प्रेत-पृथ्व्यात्मक ब्रह्मा,
जलात्मक विष्णु, तेजसात्मक रुद्र, वाय्वात्मक ईश्वर तथा
आकाशात्मक सदा-शिव (सगुण भाव से मञ्च के ब्रह्मादि चार
खुर और सदा-शिव फलक), निर्गुण भाव से पृथ्व्यादि पाँचों
तत्त्वों का ग्रास करके साक्षात् चैतन्य-रूपिणी सुन्दर पीठ पर
विराजमान, अथवा योगाभ्यास मत से पञ्च-भूतात्मक मूलाधार,
स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत और विशुद्ध-चक्र के ऊपर इडा,
पिंगला और सुषुम्णादि तीन नाड़ैयों के स्पन्दी-रूप आज्ञा-चक्र
में विराजमान, परमात्म-स्वरूपिणी श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी, हजारों
सूर्य के समान कान्ति-मयी (सगुण भाव में सहस्रार्क-वत् तेजस्विनी
अरुण-वर्णा, निर्गुण-भाव में- प्रकाशान्तर्गत विमर्श-रूपिणी)
, काम-देव के स्वरूप को तिरस्कृत करनेवाली (सगुण-भाव
में-अत्यन्त सुन्दर, निर्गुण भाव में विश्व पर-सृष्टि के
कारण-भूत अनुग्रह को करनेवाली) युवती (निर्गुण-भाव में विश्व
को पुनः स्व-गर्भ से प्रकट करनेवाली), सूर्य-चन्द्राग्नि-रूप
तीनों नेत्रों से युक्त मुखवाली (निर्गुण-भाव में-बिन्दु-त्रय
समष्टि-रूपिणी काम-कलात्मिका), गम्भीर हास्यवाली (निर्गुण-भाव
में-आनन्द-रूप), अर्ध-चन्द्र-युक्त मुकुट-धारिणी
(निर्गुण-भाव में-परमामृत-स्वरूपिणी विश्वभ्भरा),
रक्त-वस्त्रा (निर्गुण-भाव में-सूर्य-रूप अरुण प्रकाश से
आवृत्त विमर्श-शक्ति), पाश, अंकुश, पुष्प-बाण एवं
इक्षु-चाप से विभूषित (निर्गुण-भाव में १. जगद्वशीकरण,
२. जगत्-स्तम्भन,३. शोषण, मोहन, सन्दीपन, ४. तापन तथा
५. मादन-रूप पाँच पुष्प-बाण-रूप जगत्-जृम्भण एवं
जगन्मोहनकारी आयुधों से विभूषित), शुक्ल, अरुण और मिश्र

बैन्दवात्मक तथा स्थूल-सूक्ष्म एवं कारण-देह के समाहार-रूप
त्रिपुर की शक्ति श्रीत्रिपुर-सुन्दरी का मैं स्मरण करता हूँ ॥ २१-२२॥

६- अधराम्नाय

कदाचिद्-बिन्दूनां विविध-ललना-सार-मथनात्
सु-षट्-कोणं स्पष्टं वसु-दल-युतं रम्य-कमलम् ।
चतुर्द्वारोपेतं यदि भवति यन्त्रं पर-शिवे!
तदा योगेशी त्वं भवसि किल वज्रेति पद-युक् ॥ २३॥

हे परादेवी! किसी समय पूर्वोक्त शुक्ल, अरुण और मिश्र बिन्दुओं के
विविध ललना-सार के मथन से व्यक्त षट्-कोण, अष्ट-दल से
युक्त उत्तम कमल, चार द्वारों से भूषित भू-पुरवाला यन्त्र जब
बनता है, तब आप वज्र-योगिनी-रूप बनती हैं ॥ २३॥

पुरोक्ताम्नायेभ्यः प्रभवदधराम्नाय-विषये
परे वज्रा भूत्वा लससि भुवने चीन-मतगा ।
तदाऽक्षोभ्याकारः प्रभवति परो नाग-तनु-मान्
षडाम्नायाश्चेत्थं गिरिश-रस-वक्त्रैः समुदिताः ॥ २४॥

हे परे! पहले कहे गए पाँच आम्नायों से उत्पन्न अधराम्नाय में आप
जब विश्व में चीन-क्रम से पूज्य वज्र-योगिनी-रूप होकर शोभित
होती हैं, तब श्री पर-शिव नाग-शरीरी अक्षोभ्य-रूप होते हैं ।
इस प्रकार भगवान् शिव के छह मुख (छह आम्नायों के रूप में)
व्यक्त होते हैं ॥ २४॥

अधः पद्मे वज्रां त्रि-वदन-युतां मुक्त-चिकुराम्
सु-रत्नाढ्यां सिंहाजिनमभिदधानामरुणभाम् ।
कपालं खट्वाङ्गं डमरुमपि कर्त्रीं श्रुति-करै-
र्धृतांत्वामीडेऽहं मनसि शवगां नृत्य-चरणाम् ॥ २५॥

अधराम्नाय में त्रि-मुखी, मुक्त-केशी, उत्तम-रत्न (के आभरणों)
से युक्त, सिंह के चर्म को धारण की हुई, अरुण कान्तिवाली, चार
भुजाओं में महा-शंख का पात्र, खट्वांग, डमरु और कर्त्रिका
को धारण की हुई, शवासना तथा नृत्य के लिए प्रयुक्त चरणोंवाली

वज्र-योगिनी देवी की मैं मन से स्तुति करता हूँ ॥ २५॥

अधश्चीनार्च्या त्वं यम-दिशि कुलागार-ललनात्
प्रसन्ना वै पूर्वे मनुजपबलाच्चोत्तर-दिशि ।
शिवाबल्यर्च्याऽऽद्ये! सु-मममममैः पश्चिम-दिशि
स्फुरस्यूर्ध्वे मातः कुलज-मनसि न्यास-सहितैः ॥ २६॥

हे आदि-शक्ति माता! आप अधराम्नाय में चीन-क्रम से पूज्य हैं, दक्षिणाम्नाय में कुल-सन्ध्या-विधान से सन्तुष्ट होती हैं । पूर्वाम्नाय में निश्चय ही मन्त्र-जप के बल से प्रसन्न होती हैं । उत्तराम्नाय में शिवा-वलि-विधि से सन्तुष्ट होती हैं । पश्चिमाम्नाय में पञ्च-मकार-संयुक्त अर्चना से सन्तुष्ट होती हैं । ये पञ्च-मकार दक्षाचारवालों के लिए १. मनन, २. मन्त्र, ३. मौन, ४. मनो-योग और ५. मुद्रा-रूप हैं तथा वामाचार साधकों के लिए १. मद्य, २. मांस,३, मत्स्य, ४. मैथुन (कुण्डगोलादि) तथा ५. मुद्रा हैं । ऊर्ध्वाम्नाय में महा-षोढादि विविध न्यासों से कुलीनों के चित्त में स्फुरित होती हैं ॥ २६॥

अवैत्येकाम्नायं यदि कुल-जनो भाव-सहितः
स मुक्तः स्याद् भुक्त्वा भुवि विविध-भोगान् भगवति ।
पुनः किं वक्तव्यं जननि! चतुराम्नाय-विदुषो
महोर्ध्वाम्नायज्ञः कथमिह भवेत् स्तुत्य इतरैः ॥ २७॥

हे भगवती माता! यदि पूर्वोक्त दिव्य वीरादि-भावों से युक्त कौल एक आम्नाय को ही जानता है, तो वह संसार में अनेक प्रकार के सुख, ऐश्वर्य-विलासों को भोगकर अन्त में मुक्ति को प्राप्त होता है, फिर चतुराम्नायों के ज्ञाता के बारे में क्या कहा जा सकता है तथा ऊर्ध्वाम्नाय-षडाम्नाय क्रम के ज्ञाता की तो इस संसार में सामान्य मनुष्यों से स्तुति भी क्या की जा सकती है अर्थात् उसकी महिमा का वर्णन अशक्य है ॥ २७॥

इति श्रीपरापूजाप्रकाशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

—योग-तन्त्र-कर्मकाण्ड-विशारद पण्डित श्री रमानाथ जी शास्त्री

Proofread by Preeti N Bhandare

Shri Para Puja Prakasha Stotram

pdf was typeset on April 28, 2023

Please send corrections to *sanskrit@cheerful.com*